शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जनवरी 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

बीसवीं सदी की उर्दू शायरी में हिन्दुस्तानी औरत का तसव्वुर

डॉ.गार्गी अग्रवाल
इस्लामिया करीमिया कॉलेज
इंदौर,. मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

सन 1857 की पहली जंग ए आजादी के बाद मुल्क के सियासी, समाजी, अख़लाकी और अदबी हालात में बहुत से बदलाव आए जिसका असर उर्दू शायरी पर भी पड़ा। हाली, आजाद, सरुर, इकबाल और चकबस्त ने अपनी शायरी के ज़रिए औरतों की तालीम की पैरवी इससे औरतों की अज़्मत और वकार बढ़ा।

प्रस्तावना

बीसवीं सदी की शायरी पर बात करने से पहले मुनासिब होगा कि हम उन असबाब पर नजरें दौड़ाएं जिनकी वज़ह से इस सदी के शेर-ओ-अदब में नुमायां तब्दिलियों के इमकान रोशन हुए। ये वो जमाना था जब हिन्दुस्तानी समाज एक इन्कलाबी दौर और हंगामाख़ेज़ हालात से गुज़र रहा था। कदीम और जदीद के दरमियान उभरी ज़हनी और अमली कशमश ने समाज को बड़ी हद तक तसादुम की हदों तक पहुंचाया दिया था। अंग्रेजों की हुकूमत-ए-अमली ने हिन्दुस्तानियों के दिल-ओ-दिमाग में एक कुलबुलाहट पैदा कर दी थी और आने वाले ज़माने की तस्वीरें उनकी आंखों के सामने रक्स करने लगी थीं। इस तरह अगर देखा जाए तो उस अहद में एक नए समाजी तालिमी और अदबी इन्कलाब की आहटें सुनाई देने लगी थीं।

और फिर यूं हुआ के अंग्रेजों की इस हिकमतें अमल की कामयाबी ने पूरे हिन्दुस्तानी समाज को रफता रफता अपने असर में लेना शुरू कर दिया। जहां तक अदबी और शेरी या अमली तब्दिलियों का सवाल है, इस सिलसिले में काफी कुछ बदल चुका था। हिन्दुस्तानी समाज में कदामत परस्ती की नींव कमजोर होती गई। यहां तक कि नए तालीमी निज़ाम और नई अदबी नज़्म की वज़ह से उर्दू शेर-ओ-अदब और तालीमी तरीकों में काफी बदलाव आ चुका था। जिसकी वजह से कई मुदब्बिद; माहिर-ए-तालीम; फलसफी; मुआल्लिम; मुहक़्क़िक; अदीब और शायर पैदा हो चुके थे। कई ऐसे अदवारों की तश्कील की जा चुकी थी जो हिन्दुस्तानी मुआशरे की असलाह का बेड़ा उठा चुके थे।

उर्दू शायरी में हिन्दुस्तानी औरत

उर्दू अदब को इन बदलते हालात् के साथ हमकदम बनाने का बेड़ा उठाया सर सैयद और उनके रफीक-ए-खास हाली और मोहम्मद हुसैन आजाद ने। इन दोनों ने अपनी कोशिशों से उर्दू शेर-ओ-अदब में नई-नई सूरतें पैदा कीं। खास तौर से इन दोनों ने उर्दू नज़्मों को जिस तरह नये मौज़ूआत से संवारा उस में और का ज़िक्र भी पूरे समाजी वकार के साथ मौजूद है। इस अहद के मुस्लिम मुआशरे में औरत की बेबसी के बहुत से ऐसे खतरनाक पहलू मौजूद थे जिनकी वज़ह से औरत का समाजी रूतबा घट गया था। हाली का ख्याल था कि एक खानदानी लड़की को उसकी खानगी ज़िम्मेदारियों से पूरी तरह वाकिफ

करा दिया जाए तो वो आने वाले जमाने को खुषहाल बना सकती है। इसी ख्याल को अपनी नज़्म 'चुप की दाद' में बहुत मोअस्सिर अन्दाज़ में पेश किया है। इस नज़्म में उन्होंने न सिर्फ औरत की अज़्मत का खुलकर ऐतराफ किया बल्के उसे इज्जत-ए-नफ़्स और जिन्दगी का एहतराम करने वाली हस्ती बताते हुए कदम कदम पर होशमंद रहने की तलकिन की है। वो औरत को कई-कई रूप में देखते थे और उनके नज़दिक उसका हर रूप इन्तहाई अज़ीम और काबिल-ए-एहतराम होता था। कभी वो उसे माँ की शक्ल में देखते तो कभी बेटी और बहन के रूप में-

ऐ माँओं! बेटियों! दुनिया की ज़ीनत तुम से है
मुल्कों की बस्ती हो तुम ही कौ मों की इज़्ज़त तुम से है
नेकी की तुम तस्वीर हो इफ़्त की तुम तदबीर हो
हो दीन की तुम पासबां ईमान सलामत तुम से है

हाली औरत के तालीम के जबरदस्त हामी थे। उन्होंने इस सिलसिले में जो कोशिश की उन्हें हम वक्त की आवाज़ कह सकते हैं, जिसका इज़हार उन्होंने अपनी इसी नज़्म में इस तरह किया है -

दुनिया के दाना और हकीम इस ख़ौफ से लरज़ा थे सब
तुम पर मुबादा इल्म की पड़ जाए परछाईं कहीं
ऐसा ना हो मर्द और औरत में रहे बाकि न फर्क
तालीम पा कर आदमी बनना तुम्हें ज़ेबा नहीं

हाली का इस बात का शदीद अहसास था कि जब तक औरत को आला तालीम नहीं दिलाई जाती वो मजलूमीयत का शिकार होती रहेगी। इसीलिए उन्होंने बेहद मुखलिसाना अन्दाज में अपने को पेश किया।

हाली ने बेवा औरत के हालात् को देखा तो वे तड़प उठे। समाज उसे 'रांड' कहकर उसके साये को भी मनहूस करार देता था। हाली ने इस ना इन्साफी को बरदाश्त नहीं किया और उन्होंने 'मनाज़ात-ए-बेवा' के उनवान से एक ऐसी नज़्म की तख्लीम की जिसमें उन्होंने औरत की उस बेबसी को जाहिर करते हुए उसे समाज की एक दुखयारी की शक्ल में पेश किया -

आँख में एक-एक के यूं हो खटकती
पर अपने बस में मर नहीं सकती

हाली को अपनी इस नज़्म के जरिए एक बेबस और मज़लूम औरत की जिस हालात-ए-ज़ार को पेश किया है। उससे ये ज़ाहिर होता है कि उनके अहद में औरत महज़ एक ऐसी बेबसी का मुज़्समा थी जो खुद पर होने वाला मुज़ालिम के खिलाफ़ फ़रियाद करने की हिम्मत भी नहीं कर सकती थी। हाली ने उस में इतना हौसला पैदा किया कि वो कम अज़ कम अपनी फरियाद अपने खु दा के हज़ूर में तो पेश कर सके। हाली को इस बात का अहसास था कि औरत के बग़ैर कोई भी समाज तरक्क़ी नहीं कर सकता।

हाली के अलावा एक और शायर दुर्गा सहाय सरुर हैं, जिनकी नज़्मों में औरत के जमालियाती पहलूओं की अक्कासी भी नज़र आती है। उन्होंने हुस्न के जमालियाती और नफ्सियाती पहलूओं को बखूबी समझ लिया था इसकी मिसाल उनकी नज़्म एक 'हसीना और जुगनू' में देखी जा सकती है मिला ख़त कीजिए -

जगमगाता न शब-ए-तार में जुगनू होकर
काश रहता मेरी खातिम का नगीं तु होकर
क्या चमकता है शब ए तार में तन्हा जुगनू
आ मिरी चान्द सी जुगनी पे चमक जा जुगनू

अपनी इस नज़्म में सरुर औरत की उस फितरत की जानिब भी इशारा करते हैं। सरुर ने

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जनवरी 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

हिन्दुस्तानी औरत को उसकी मज़हबी तक्दीस के साथ भी देखा है। इस सिलसिले में उनकी नज़्म 'सीताजी की आह-ओ-ज़ारी' को पेश किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने सीताजी को एक बावकार औरत की शक्ल में पेश किया है जो शोहर परस्त भी है और वफा की देवी भी। सीता के वो जज़्बात जिनका इज़हार वो अपने शोहर रामचन्द्र जी के वन जाते वक्त करती है; देखिए -

हम राह अपने वन में मुझे साथ ले चलो
रेखा तुम्हारे चरणों की हूँ साथ ले चलो
नाज़ुक है मेरा शीशा-ए-दिल टूट जाएगा
छूटा तुम्हारा साथ तो जी भी छूट जाएगा
माना कि दश्त में ग़म-ओ-आलम है बहुत
वन वासियों को दुःख सहर-ओ-शाम है बहुत
ईज़ा अगरचे आबला पाई की है कड़ी
दोज़ख से बढ़के आग जुदाई की है बड़ी

सरुर के इस अन्दाज़े बयान और जज़्बात निगारी के बारे में रामबाबू सक्सेना कहते हैं -

"उनकी शायरी की सबसे बड़ी खुसुसियत जज़्बात निगारी और दरद-ओ-असर है। इस रंग में वो अपने ज़माने में अपना जवाब नहीं रखते थे।"

तारीख़-ए-अदब उर्दू सफ़ा - 227

इस तरह कहा जा सकता है कि हाली ने जिस तरह अपने अहद की औरत के वकार और उसकी अज़मत के साथ ही उस पर होने वाले मुजालिम और ना इन्साफियों का ज़िक्र अपनी नज़्मों में पहली बार किया था। उसकी तकलीद में बाद के कई शोरा ने अपनी ऐसी तखलीकात पेश की जिनमें औरत का हर पहलू बहुत खुलकर सामने आने लगा। उन शोरा ने उसके हुस्न-ओ-जमाल का जिस तरह ज़िक्र किया उसमें उसकी पाकिज़गी और तक़दीस के साथ ही उसकी समाजी हैसियत उसके वकार को भी सामने रखा था।

इकबाल की शायरी में औरत के तसव्वुर का सवाल है तो जब वो दाग़ देहलवी के शागिर्द हुए तब एक रवायती औरत का तसव्वुर जरूर दिखाई देता है। जिसकी झलक उनकी उस अहद की ग़ज़लों में नज़र आती है। मगर उन्होंने उन रवायत को ज्यादा काबिल ए कबूल नहीं समझा और जैसे-जैसे उन्होंने अमली पैमाने पर औरत के तसव्वुर का मुताला किया उनके नजरयात में तब्दिलियां आती गई। उनके नजदीक औरतों की तालीम जरूरी थी, मगर वो औरत की तालीम उन हदूद में देखने के काइल थे जो उन्हें बा शउर तो बनाए मगर जो उन्हें शर्म ओ हया से दूर करते हुए बेहयाई के पेकर में डालने का वसीला न बने। चूंकि वे मगरिबी औरत की उस तहज़ीब का अन्जाम देख चुके थे जिसमें 'आजादी' के नाम पर बेहयाई को अव्वालियत दे दी गई थी। इसलिए उन्होंने उसके खिलाफ तन्ज़यालहज़े में इस तरह आवाज़ उठाई -

क्या फायदा कुछ कह के बनो और भी मआतुब
पहले ही ख़फ़ा मुझसे हैं तहज़ीब के फ़रज़न्द
इस राज़ को औरत की बसीरत ही करे फाश
मजबूर है मआजुर हैं मरदान-ए-खर्द मन्द
क्या चीज है आराईशें कीमत में ज्यादा
आज़ादी ए गुस्तां के ज़म्मरुद का गुलुबन्द

इकबाल को औरत की अज़मत और उसके मरतबे का अहसास था। इसलिए वो इस बात का ऐलान भी करते नज़र आते हैं कि जब तक औरत अपनी अहमियत को नहीं समझती वो समाज में आला मुक़ाम हासिल नहीं कर सकती। इसके लिए वो इस्लाम की उस फ़िक्र को पेश ए नज़र रखते हैं, जिसमें औरत को मर्द के साथ तरक्की करने और अपनी सलाहियतों को उभारने की बात

कही गई है। इस सिलसिले में उनका ये ख़्याल बिलकुल सही मालूम होता है कि -

वजूद-ए-ज़न से है तस्वीर-ए-कायनात् में रंग
उसी के साज से है ज़िन्दगी का सोज़ ए दरूं
शर्क में बढ़के सरया से मुश्त-ए-खाक उसकी
के हर शर्फ है उसी दर्जे का दुस्-ए-मकनूं
मकालमात-ए-फलातून न लिख सकी लेकिन
उसी के शोले से टूटा शरार-ए-अफलातून

इकबाल औरत के बारे में इस ख़्याल को पेश-ए-नज़र रखते हैं के उसे तालीम के जेवर से तो आरास्ता किया जाए मगर मगरिबी तहज़ीब की उस बर्बाद कुन सुरत से उसे जहां तक हो बचाया जाए जिसका वजूद मशरकी और के लिए इन्तहाई खतरनाक हो सकता है।

पंडित ब्रजनारायण चकबस्त ने अपनी नज़्मों में जहाँ कौम-ओ-वतन के मसाइल को पूरी शिद्दत के साथ पेश किया है। वहीं उन्होंने हिन्दुस्तानी समाज के बदलते हुए हालात् पर भी गहरी नज़र रखी है। औरत की तालीम और उसकी तरबीयत के सिलसिले में उन्होंने खुलकर इस बात की ताइद की है औरत का तालीमयाफ्ता होना ज़रुरी है। उनकी नज़्म फूल माला को पेश किया जा सकता है -

रविश-ए-खाम पे मर्दों की न जाना हरगिज़
दाग़ तालीम पे अपनी न लगाना हरगिज

इस तरह कहा जा सकता है के उर्दू में बीसवीं सदी की शुरुआत में जो शायरी हुई वो औरतों की तालीम की राह रोशन करने वाली थी।

फ़ेहरिस्त

- *जदीद उर्दू शायरी, अब्दुल कादिर सरवरी*
- *तारीख़ ए अदब उर्दू, रामबाबू सक्सेना*
- *यादगार ए हाली, सालेहा आबीद हुसैन*
- *सरुर जहाँ आबादी हयात ओ शायरी, हकीम चन्द नेर*